संघ

प्रथम अध्याय

संघ के कर्तव्य

1
भिक्षुओं का जीवन

1. जो आदमी मेरा शिष्य बनना चाहता है उसे परिवार का त्याग करना चाहिए, संसार का त्याग करना चाहिए, संपत्ति का त्याग करना चाहिए।

धर्म के लिए जो इस प्रकार का त्याग करता है वह मेरा उत्तराधिकारी है और प्रव्रजित श्रमण कहा जाता है।

कोई मेरे चीवर का छोर पकड़कर मेरे पदचिह्नों पका अनुसरण करे, पर यदि उसका मन लोभ से अशान्त है तो वह मुझसे दूर है। भले ही उसका रूप भिक्षु का हो, पर वह धर्म का दर्शन नहीं कर रहा; और जो धर्म का दर्शन नहीं करता वह मेरा दर्शन नहीं करता।

भले ही कोई मुझसे हज़ारों मील दूर हो, यदि उसका हृदय पवित्र और शान्त है, लोभ से मुक्त है तो वह मेरे बिल्कुल निकट है। क्योंकि वह धर्म का दर्शन कर रहा है और जो धर्म का दर्शन करता है वह मेरा दर्शन करता है।

2. प्रव्रजित शिष्यों को इन चार नियमों (आश्रयों) को अपने जीवन का आधार बनाना होगा:

पहला, चीथड़ों को जोड़कर बनाया गया चीवर पहनना; दूसरा, भिक्षा माँगकर अपना भोजन प्राप्त करना; तीसरा, पेड़ के नीचे या शिला के ऊपर, जहाँ भी रात हो जाए, आवास करना; चौथा गौमूत्र से बनी हुई दवा का ही उपयोग करना।

हाथ में भिक्षापात्र लेकर दर-दर भटकना भिखारी का जीवन है। किन्तु भिक्षु इसके लिए किसी के द्वारा बाध्य नहीं किया जाता, न वह परिस्थितियों के कारण या लालच के कारण भिक्षा माँगता है; ऐसा वह अपनी इच्छा से करता है, क्योंकि वह जानता है कि श्रद्धा का जीवन उसे जीवन की भ्रान्तियों से मुक्त करेगा, सांसारिक दु:खों से बचाएगा और निर्वाण की ओर ले जाएगा।

भिक्षु का जीवन आसान नहीं है; यदि वह लोभ और क्रोध से अपने मन को मुक्त नहीं रख सकता अथवा अपने मन या पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं रख सकता तो उसे भिक्षु नहीं बनना चाहिए।

3. जो अपने श्रमण मानता है और लोगों द्वारा पूछे जाने पर 'मैं श्रमण हूँ'' ऐसा उत्तर देता है, वह नि:संशय यह भी कह सकता है:

''श्रमण के नाते जो भी करना चाहिए उसका मैं अवश्य पालन

करूँगा। इस श्रमण संज्ञा को सार्थक करनेवाले मार्ग पर आरूढ़ होकर मैं यह प्रयास करता रहूँ कि जिसने मुझे दान दिया है उसे इसका महाफल प्राप्त हो और मेरा भी प्रव्रजित होने का उद्देश्य सफल हों''

अच्छा, तो वे कौन-सी बातें हैं जो श्रमण को करनी चाहिए? उसे ही और अपत्रपा को धारण करना चाहिए; जीवन को शुद्ध रखने के लिए अपनी काया, वाचा और मन इन तीनों के आचरण पवित्र होने चाहिए; पंचेन्द्रियों के द्वारों को ठीक रखवाली करनी चाहिए; किसी क्षणिक भोगविलास के लिए अपने मन का संयम खोना नहीं चाहिए; आत्मश्लाघा और परनिन्दा नहीं करनी चाहिए; और उसे आलस्य या दीर्घ निद्रा का शिकार नहीं बनना चाहिए।

शाम को शांति से बैठकर ध्यान करने और सोने से पहले चंक्रमण के लिए उसे समय निकालना चाहिए। रात को सोते समय दाहिनी बगल से लेटकर पैर के ऊपर पैर रखकर सोना चाहिए और उस समय उसका आखिरी विचार दूसरे दिन सवेरे जल्दी वह जब उठना चाहता है उस समय के संबंध में होना चाहिए। सवेरे जल्दी उठकर उसे फिर शांति से बैठकर ध्यान करने ओर चंक्रमण करने का समय निकालना चाहिए।

दिन-भर उसे अपने मन को सतत सचेत रखकर, अपने शरीर और मन को संयमित रखना चाहिए; और इस प्रकार लोभ, क्रोध, मूढ़ता, निद्रालुता, मन की चंचलता, पश्चात्ताप, संदेह स मुक्त होकर हृदय को पवित्र करना चाहिए।

इस प्रकार चित्त को एकाग्रकर, श्रेष्ठ प्रजा का विकासकर क्लेशों से मुक्त होकर उसे केवल निर्वाण की दिशा में बढ़ते जाना चाहिए।

4. प्रव्रजित होकर भी भिक्षु यदि लोभ, क्रोध, आमर्ष, ईर्ष्या, घमंड, आत्मश्लाघा अथवा व्यापाद को नष्ट न कर पाए, उसमें रचापचा रहे तो उसकी प्रव्रज्या चीवर में लिपटे हुए दुधारी आयुध के समान है।

चीवर धारण करने मात्र से और हाथ में भिक्षा-पात्र ले लेने से भिक्षु प्रव्रजित नहीं होता। न वह सरलता से सूत्र-पाठ करने मात्र से प्रव्रजित होता है। उसका तो केवल बाह्य आकार ही श्रमण का होता है।

श्रमण का बाना धारण करके भी वह अपनी सांसारिक वासनाओं से मुक्त नहीं हो पाता। शिशु को भिक्षु के वस्त्र पहनाकर भी भिक्षु कैसे कहा जा सकेगा?

जो अपने चित्त को एकाग्र और संयत कर सकते हैं, जो प्रश्रावान हैं, सभी सांसारिक वासनाओं से मुक्त हैं और जिनका एकमात्र लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है—केवल उन्हीं लोगों को सच्चा प्रव्रजित कहा जा सकता है।

भले खून सूख जाए और हड्डियाँ चूरचूर हो जाएँ तो भी सच्चा प्रव्रजित श्रमण निर्वाण-प्राप्ति के अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता। ऐसा

व्यक्ति अपनी सारी शक्ति लगाकर अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा और इस प्रकार प्रव्रजित श्रमण के पुण्यकर्म करने की अपनी योग्यता को साबित कर दिखाएगा।

5. प्रव्रजित भिक्षु का जीवन-कार्य बुद्ध के उपदेशों के प्रकाश को फैलाना है। उसे सब को धर्मोपदेश करना चाहिए; सोए हुए लोगों की आँखें खोलनी चाहिए; मित्यादृष्टि को ठीक करना चाहिए; सम्यक्-दृष्टि प्राप्त करने में लोगों की सहायता करनी चाहिए; उसे अपनी जान खतरे में डालकर भी सर्वत्र धर्म-प्रचार के लिए जाना चाहिए।

किन्तु धर्मोपदेश करना आसान काम नहीं है; जो धर्मोपदेश की आकांक्षा करता है उसे तथागत के वस्त्र धारण करने चाहिए, तथागत के आसन पर बैठना चाहिए और तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करना चाहिए।

तथागत की चीवर धारण करने का अर्थ है आर्जव (विनम्रता) और क्षान्ति (सहिष्णुता) धारण करना; तथागत के आसन पर बैठने का अर्थ है सब वस्तुओं को शून्य समझना; तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करने का अर्थ है सब प्राणियों के प्रति मित्रता और करुणा की भावना रखना।

6. फिर जो बुद्ध के उपदेशों का प्रकाशन इस प्रकार करना चाहते हैं कि वह सब को स्वीकार हो, तो उन्हें चार बातों का ध्यान रखना चाहिए; पहले, उन्हें अपने खुद के आचरण का ध्यान रखना चाहिए; दूसरे लोगों को उपदेश करते समय शब्दों के चुनाव का ध्यान रखना चाहिए; तीसर उन्हें उपदेश करने के अपने हेतु और लक्ष्यसिद्धि का ध्यान रखना चाहिए और चौथे, उन्हें महाकरुणा का ध्यान रखना चाहिए।

अच्छे धर्मप्रचारक को सर्वप्रथम क्षान्ति की भूमि पर अपने पैर स्थिर रखने चाहिए; उसे विनयी होना चाहिए; उसे आत्यंतिक नहीं होना चाहिए अथवा आत्मप्रचार की इच्छा नहीं करनी चाहिए; उसे वस्तुओं की शून्यता का सतत चिंतन करना चाहिए; और उसे किसी बात से आसक्त नहीं हाना चाहिए। यदि वह इस प्रकार ध्यान रखे तो सदाचरण का पानल कर सकेगा।

दूसरे, उसे भिन्न-भिन्न मनुष्यों और परिस्थितियों से संपर्क करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। उसे सत्ताधारी लोगों या पापकर्मियों को टालना चाहिए. उसे स्त्रियों के बचकर रहना चाहिए। वह मैत्रीभाव से लोगों से व्यवहार करे; उसे सदा ख्याल रखना चाहिए कि सभी वस्तुएँ हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न होती हैं और इस भूमिका पर खड़े होकर उसे लोगों को दोष न देना चाहिए या उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए या उनके अपकर्मों की चर्चा नहीं करनी चाहिए, अथवा उन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

तीसरे, उसे बुद्ध को पितृतुल्य समझकर, निर्वाण की साधना करने वाले दूसरे भिक्षुओं को अपना गुरु समझकर और सभी लोगों की ओर

महाकरुणा की दृष्टि से देखते हुए अपने मन को शांत रखना चाहिए। फिर उसे सब को समानता से उपदेश देना चाहिए।

चौथे, बुद्ध के समान ही उसे अत्यधिक मात्रा में करुणावृत्ति प्रदर्शित करके, मन मे यह कामना करनी चाहिए कि जो लोग निर्वाण की कामना करना नहीं जानते, उनके मन में धर्मश्रवण के प्रति अवश्य रुचि बढ़े और फिर अपनी इस कामना के अनुसार उसे प्रयत्न करना चाहिए

2
उपासकों का मार्ग

1. यह पहले भी समझाया जा चुका है कि बुद्ध का शिष्य बनने के लिए त्रिरत्न-बुद्ध धर्म और संघ में श्रद्धा करनी चाहिए।

अत: जो उपासक बनना चाहता है उसे बुद्ध, धर्म और संघ में अविचल श्रद्धा होनी चाहिए और धर्म में उपासक के लिए विहित शीलों का पालन करना चाहिए।

उपासक के लिए विहित पाँच शील हैं: किसी भी प्राणी की हत्या न करना; चोरी न करना, व्यभिचार न करना; असत्य भाषण न करना; नशा न करना।

उपासकों को न केवल स्वयं त्रिरत्न में विश्वास और शीलों का पालन करना चाहिए, अपितु उनका पालन करने में अन्य जनों की भी यथासंभव सहायता करनी चाहिए, विशेषकर अपने संबंधियों और मित्रों की। उनमें बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति अविचल श्रद्धा पैदा करनी चाहिए, ताकि उनपर भी बुद्ध की करुणा बरसे।

उपासकों को इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि वे इसलिए त्रिरत्न में विश्वास करते और शीलों का पालन करते हैं कि अंत में वे निर्वाण को प्राप्त कर सकें और इसलिए वासनाओं के संसार में रहते हुए भी उन्हें वासनाओं की आसक्ति से बचे रहना चाहिए।

माता-पिता से भी देर-सबेर अलग होना पड़ेगा। परिवार से भी कभी न कभी अलग होना पड़ेगा। इस संसार से भी अन्त में चल बसना होगा। जिनसे अलग होना पड़ेगा, जहाँ से चले जाना होगा उनके बंधन में न फँसकर, जिसमें प्रवेश कर कभी वियोग नहीं हो सकता उस निर्वाण की ओर हृदय को लगाना चाहिए।

2. बुद्ध का उपदेश सुनकर, गहरी श्रद्धा का अनुभव हो और वह सदा दृढ़ और अविचल रहे तो सहज ही हृदय में आनन्द स्फुरित होता है। इस अवस्था में प्रवेश करें, तो हर वस्तु प्रकाशमय दिखाई देती है, हर बात में आनन्द का अनुभव हो सकता है।

यह श्रद्धामय हृदय सदा पवित्र और मृदु, सदा सहनशील और धीर, कभी दूसरों को परेशान न करनेवाला और सदा बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न का चिंतन करनेवाला होता है। अत: उसमें आनन्द सहज ही उभर आता है और सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ता है।

क्योंकि श्रद्धावान होने के कारण वे बुद्ध से एकात्म होते हैं और अहंभाव से मुक्त हो जाते हैं, उन्हें अपनी धन-दौलत से कोई आसक्ति नहीं होती। अत: जीवन में उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता और निन्दा की कोई परवाह नहीं होती।

मृत्यु का उन्हें कोई भय नहीं होता, क्योंकि उन्हें श्रद्धा होती है कि वे बृद्ध के क्षेत्र में जन्म लेंगे। क्योंकि बुद्ध के उपदेशों की सत्यता और पावनता में उनकी श्रद्धा होती है, वे बिना झिझक के निर्भय होकर लोगों के सामने अपनी श्रद्धा के संबंध में विचार प्रकट कर सकते हैं।

क्योंकि उनके हृदय सब लोगों के प्रति करुणा से परिपूर्ण होते हैं, वे उनमें भेदभाव नहीं करते, अपितु सब से समानता का व्यवहार करते हैं, क्योंकि उनका हृदय प्रिय-अप्रिय भाव से मुक्त होता है, वह शुद्ध और समदृष्टि होता है, इसलिए उत्साह से पुण्यकर्मों में जुट जाता है।

वे विपन्नावस्था में हों या संपन्नावस्था में, उनकी श्रद्धा की वृद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि वे विनयशील हों, यदि वे बुद्ध के उपदेशों

का आदर करते हों, यदि उनके वचन और आचरण में एकता हो, यदि प्रज्ञा उनकी मार्गदर्शक हो, यदि उनका मन पर्वत के समान अविचल हो, तो वे निर्वाण के पथ पर स्थिर प्रगति करते रहेंगे।

और यदि उन्हें कठिन परिस्थितियों और दुश्चरित्र लोगों के बीच रहने के लिए बाध्य किया जाए तो भी बुद्ध में गहरी श्रद्धा होने के कारण वे उन लोगों को पुण्यकार्यों की ओर ले जा सकते हैं।

3. इसलिए हरएक को सर्वप्रथम बुद्ध के उपदेशों का श्रवण करने की कामना करनी चाहिए।

यदि कोई कह दे कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए आग में से गुजरना होगा, तो उसे ऐसी आग में से गुजरने के लिए भी तैयार हो जाना चाहिए।

बुद्ध के नाम-श्रवण से होने वाले संतोष के लिए आग से भरे संसार में से गुजरने का मूल्य चुकाने की तैयारी होनी चाहिए।

यदि कोई बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करना चाहता है तो उसे अहंकारी या स्वेच्छाचारी नही होना चाहिए, अपितु सब के प्रति समानरूप से सद्भावना रखनी चाहिए। जो आदर के योग्य हों उनका आदर करना चाहिए; जो सेवा के योग्य हों उनकी सेवा करनी चाहिए और सब के साथ समान कृपालुता से व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार उपासकों को सबसे पहले अपने मन को साधना चाहिए और दूसरों की बातों से अस्वस्थ नहीं होना चाहिए। इस तरह उन्हें बुद्ध के उपदेश को ग्रहण करना तथा उसके अनुसार आचरण करना चाहिए और ऐसा करते समय दूसरों से ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, दूसरों से प्रभावित नहीं होना चाहिए और दूसरे मार्गों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

जो बुद्ध के उपदेश में विश्वास नहीं करते, उनकी दृष्टि संकीर्ण होती है और इसलिए उनका मन अस्थिर रहता है। किन्तु जो बुद्ध के उपदेश में विश्वास करते हैं, उनकी यह श्रद्धा होती है कि बुद्ध की महाप्रज्ञा और महाकरुणा सब को सुलभ है, और इस श्रद्धा के कारण वे छोटी-छोटी बातों से विचलित नहीं होते।

4. जो लोग बुद्ध के उपदेश को श्रवण और ग्रहण करते हैं वे जानते हैं कि उनका जीवन अनित्य है आर उनका शरीर केवल दुःखों की समष्टि-मात्र है और सब पापों का मूल है, और इसलिए वे उससे आसक्त नहीं होते।

साथ ही, वे अपने शरीर का अच्छा ख्याल रखने में आलस्य नहीं करते, इसलिए नहीं कि वे शरीरिक उपभोगों की लालसा रखते हैं, अपितु इसलिए कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए और दूसरों का पथप्रदर्शन करने के अपने जीवनकार्य के लिए शरीर एक आवश्यक साधन है।

यदि वे शरीर का ठीक ख्याल नहीं रखते तो वे दीर्घकाल जी नहीं

सकते। यदि वे दीर्घकाल नहीं जीते, तो न वे स्वयं धर्म का आचरण कर सकते हैं, न दूसरों को उसकी शिक्षा दे सकते हैं।

यदि मनुष्य को नदी पार करनी हो तो वह अपने बेड़े का बहुत ख्याल रखता है। यदि उसे लम्बी यात्रा पर जाना है तो वह अपने घोड़े का अच्छा ख्याल रखता है। उसी प्रकार निर्वाण-प्राप्ति की कामना करनेवालों को अपने शरीर का अच्छा ख्याल रखना चाहिए।

बुद्ध के शिष्यों को कपड़े सख्त गर्मी और सर्दी से अपने शरीर की रक्षा करने और गृह्यांग को ढँकने के लिए पहनने चाहिए, अपने शरीर को सजाने के लिए नहीं।

अन्न भी उन्हें अपने शरीर के पोषण के लिए ग्रहण करना चाहिए ताकि वे उपदेश श्रवण और ग्रहण कर सकें और उसकी शिक्षा दे सकें, किन्तु उन्हें केवल स्वाद के लिए नहीं खाना चाहिए।

इसी प्रकार घर का उपयोग भी उन्हें अपने शरीर के लिए अथवा अपने मिथ्याभिमान या झूठे गौरव के लिए नहीं करना चाहिए। निर्वाण के घर में उन्हें इसलिए रहना चाहिए कि क्लेशों के चोरों और मिथ्या उपदेशों की आँधियों से अपनी रक्षा कर सकें।

इस प्रकार सभी वस्तुओं का मूल्यांकन और उनका उपयोग केवल निर्वाण और उपदेश के लिए उनकी उपयोगिता की दृष्टि से ही करना चाहिए। स्वार्थ के लिए उन्हें अपने पास रखना या उनसे आसक्त नहीं होना चाहिए; केवल दूसरों तक उपदेश पहुँचाने की उनकी उपयोगिता के कारण उन्हें अपने पास रखना चाहिए।

इसलिए घर में परिवार के साथ रहते हुए भी उनका मन सदा उपदेश में लगा रहना चाहिए। उसे समझदार और सहानुभूति से परिवार के लोगों का ध्यान रखना चाहिए, साथ ही विभिन्न उपायों से उनके मन में श्रद्धा जाग्रत करनी चाहिए।

5. इस बौद्ध संघ के उपासक अपने माता-पिता की सेवा करने, परिवार की सेवा करने, अपनी सँभाल रखने और बुद्ध की भक्ति करने में प्रत्यनशली रहते हैं।

माता-पिता की अच्छी तरह सेवा करनी हो तो सभी प्राणियों की रक्षा और पोषण करने, सब को सुख और शान्ति प्रदान करने के उपाय करने चाहिए। पत्नी और बाल-बच्चों के साथ सुखपूर्वक रहना हो तो कामुकता और अपने ही सुख के विचार से बचे रहकर यह ख्याल रखना चाहिए कि प्रेमासक्ति के कैदखाने से एक दिन अवश्य मुक्ति पानी होगी।

पारिवारिक संगीत सुनते समय उन्हें बुद्ध के उपदेशों के मधुरतम संगीत की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वही अक्षय आनन्द का स्रोत है। उसी प्रकार घर के आश्रय में रहते हुए उन्हें बार-बार ध्यान का आश्रय भी ग्रहण करते रहना चाहिए, जिस आश्रय को ग्रहण कर विज्ञजन सभी सांसारिक झंझटों और आपदाओं से मुक्तिलाभ करते हैं।

जब कभी दूसरे को दान करना पड़े तब अपने हृदय से सभी प्रकार का लोभ हटाने की भावना रखनी चाहिए; सभा-सम्मेलनों में सम्मिलित होते समय विद्वानों का संग-साथ और बुद्धों की परिषद में प्रवेश करने की भावना रखनी चाहिए; जब भी संकटों का सामना करना पड़े तब मन को स्थिर और शांत रखना चाहिए।

बुद्ध की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ निर्वाण-प्राप्ति की कामना करनी चाहिए।

धर्म की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ धर्म के खजाने में गहरे उतरकर महार्णव के समान विशाल प्रज्ञा की प्राप्ति की कामना करनी चाहिए।

संघ की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ जनता का मार्गदर्शन कर, सभी बाधाओं को दूर करने की कामना करनी चाहिए।

वस्त्र पहनते समय कुशलमूलों को प्रायश्चित्त को अपने वस्त्र बनाने की बात भूलनी नहीं चाहिए।

मल-परित्याग करतेसमय चित्त के मल-लोभ, क्रोध और मूढ़ता को त्यागने कीकामना करनी चाहिए।

उँचे पहाड़ी रास्ते को देखकर उन्हें सोचना चाहिए कि अनुत्तर सम्यक्संबोधि के मार्ग पर चढ़कर मोह के संसार के उस पार चले जाएँ। नीचे की ओर जानेवाले उतराई मार्ग को देखकर उन्हें विचार करना चाहिए कि हलके पाँवों से नीचे उतरकर गहराई में उपदेश के मर्म तक पहुँच जाएँ।

जब वे पुल को देखें, तो उपदेश के पुल बनाकर लोगों को उस पार ले चलने की कामना करें।

जब किसी दु:खी मनुष्य को देखें, तो इस अनित्य परिवर्तनशील संसार की कटुता पर विलाप करें।

जब किसी लोभासक्त मनुष्य को देखें तो इस जीवन की मोह-माया से मुक्त होकर निर्वाण-प्राप्त करने की कामना करें।

जब बहुत स्वादिष्ट भोजन मिले तब मितव्यतिता का ख्याल कर लोभ को कम कर आसक्ति से मुक्ति पाने की कामना करनी चाहिए; जब स्वादहीन भोजन मिले तो सांसारिक लोभ से सदा के लिए मुक्ति पाने की इच्छा करनी चाहिए।

ग्रीष्म की सख्त गर्मी में, क्लेशों के ताप से मुक्त होकर निर्वाण की शीतलता प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। शिशिर की असहय सर्दी में भगवान बुद्ध की महाकरुणा की गरमाहट का ख्याल करना चाहिए।

सूत्रां का पठन करते समय सभी सूत्रों को धारणकर उन्हें न भूलने और आचरण में लाने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

जब बुद्ध का ख्याल करें तब बुद्ध के समान दिव्यचक्षु पाने की इच्छा करनी चाहिए।

रात को सोते समय यह इच्छा करनी चाहए कि काया, वाचा और मन इन तीनों के व्यापारों को रोककर हृदय को शुद्ध किया जाए; सवेरे आँख खुलने पर यह कामना करें कि सब कुछ साफ नज़र आकर सभी बातें

ठीक ध्यान में आ जाएँ।

6. बौद्ध-दर्शन में विश्वास करनेवाले उपासक सभी वस्तुओं के यथार्थ रूप, अर्थात् 'शून्यता' के सिद्धान्त को जानते हैं, इसलिए वे संसार के सभी कार्यकलापों या मनुष्य-मनुष्य के बीच विभिन्न बातों को तुच्छ नहीं मानते, अपितु उनकों जैसे का तैसा स्वीकार कर उन्हें निर्वाण के लिए साधन बनाने का प्रयत्न करते हैं।

उन्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि मनुष्यों का यह जगत् भ्रान्तिपूर्ण और अर्थहीन है एवम् निर्वाण का जगत् शांतिमय और अर्थपूर्ण है। अपितु उन्हें संसार की सभी घटनाओं में निर्वाण के मार्ग का अनुभव करना चाहिए।

अविद्या के आवरण के कारण दूषित दृष्टि से देखा जाए तो यह संसार अथहीन और गलतियों से भरा हुआ लगेगा, किन्तु यदि उसे प्रजा की दृष्टि से स्पष्ट रूप से देखा जाए तो वह उसी रूप में निर्वाण का जगत् बन जाएगा।

वस्तुओं में अर्थहीन वस्तु और अर्थपूर्ण वस्तु इस प्रकार का भेद नहीं होता, अच्छी वस्तु और बुरी वस्तु का भेद भी नहीं होता। भेद-दृष्टि रखनेवाला मनुष्य ऐसा द्वैत पैदा करता है।

भेद-दृष्टि का त्यागकर प्रज्ञा के प्रकाश में सब कुछ देखा जाए, तो सभी वस्तुएँ उदात्त अर्थ से भरी हुई दिखाई देंगी।

7. बौद्ध-दर्शन में विश्वास करनेवाले लोग, इस प्रकार बुद्ध में श्रद्धा रखकर, उस श्रद्धापूर्ण हृदय द्वारा संसार की सभी बातों में उदात्तता का अनुभव करते हैं और फिर उसी हृदय से विनीत भाव से दूसरों की सेवा करते हैं।

अत: उन्हें अपने हृदय से सभी प्रकार का लोभ हटा देना चाहिए और विनयशीलता तथा शिष्टाचार अपनाकर दूसरों की सेवा में लगे रहना चाहिए। उनका हृदय उस धरती माता के समान होना चाहिए जो सब का पक्षपात रहित पोषण करती है, जो बिना किसी शिकायत के सेवा करती रहती है, जो सब सहती है और सतत उद्गमशील है। उन्हें सभी गरीब लोगों की सेवाकर उनके हृदय में कुशलमूलों का आरोपण करने की इच्छा रखनी चाहिए।

इस प्रकार लोगों के कंगाल मनों के प्रति दयाभाव रख, सब की वात्सल्यपूर्ण माता बनने की चाह रखनेवाला हृदय, सभी लोगों का माता-पिता के समान आदरकर अपने उदात्त श्रेष्ठ गुरु के रूप में उनकी वन्दना करने वाला हृदय भी होता है।

इसलिए बौद्धधर्म के उपासकों के प्रति चाहे हजारों लोग द्वेषभाव रखें, शत्रुता करें या उन्हें हानि पहुँचाने की इच्छा करें तो भी कोई उनका बाल बाँका नहीं कर पाएगा। महासागर में किसी भी प्रकार का विष डालें तो क्या उसके पानी को दूषित कर हानिकारक बनाया जा सकता है?

8. बौद्धधर्म के उपासकों को सिंहावलोकन करते हुए अपने इस सुख से

हर्षित और कृतज्ञ होना चाहिए कि बुद्ध पर श्रद्धा रखनेवाला उनका हृदय बुद्ध की सामर्थ्य और उनकी कृपा के कारण ही बना है।

क्लेशों के कीचड़ में तो श्रद्धा के बीज नहीं होते, किन्तु, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उस कीचड़ में बुद्ध की करुणा और कृपा से श्रद्धा के बीज आरोपित किए जा सकते हैं, जो प्रस्फुटित होकर हृदय को शुद्ध और पवित्र कर देते हैं और हृदय बुद्ध के प्रति श्रद्धालु हो जाता है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, एरंडों के वन में सुगंधित चंदन वृक्ष कभी पनप नहीं सकता, वैसे की क्लेशों के कलुषित हृदय में बुद्ध की श्रद्धा के बीज कभी अंकुरित नहीं हो सकते।

किन्तु वास्तव में यदि क्लेशों से भरे हृदय मे आनंद का पुष्प विकसित हो रहा है, तो यह जान लेना चाहिए कि उसके मूल वहाँ नहीं, कहीं और हैं; अर्थात् उसके मूल बुद्ध के हृदय में हैं।

यदि उपासक अहंभाव से अभिभूत हो जाए, तो वह लोभ, क्रोध और मूढ़ता-भरे हृदय से दूसरों की ईर्ष्या करने, मत्सर करने, द्वेष करने और दूसरों को नुकसान पहुँचानेवाला बन जाता है। किन्तु यदि बुद्ध की ओर लौट आए तो ऊपर कहे अनुसार बुद्ध की सेवा का महान कार्य करनेवाला बन जाएगा। इसे सचमुच एक अद्‌भुत आश्चर्य ही कहना होगा।

3
जीवन का मार्गदर्शक पथ

1. यह मानना गलत है कि विपत्तियाँ पूर्व से या पश्चिम से आती है; उनका मूल तो अपने खुद के हृदय में होता है। इसलिए मन को अनियंत्रित छोड़कर बाहर से उनसे बचने के लिए प्रयास करना बड़ी भूल है।

पुराने समय से एक प्रथा चली आती है, जिसका पालन अब भी साधारण लोग करते हैं। सवेरे जल्दी उठकर वे हाथ-मुँह धोते और हाथ जोड़कर पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, नीचे और ऊपर की छह दिशाओं की वन्दना करते हैं, और इस प्रकार संकटों के द्वारों को अवरुद्धकर दिन-भर की सुरक्षा की कामना करते हैं।

किन्तु बुद्ध के आर्यधर्म में इस प्रकार नहीं किया जाता। बुद्ध हमें सिखाते हैं कि हम सत्य ही छह दिशाओं की आदर से वन्दना करे और फिर समझदारी से पुण्यकार्य करके सभी संकटों से अपनी रक्षा करें।

छह दिशाओं के द्वारों की रखवाली करने के लिए लोगों को चार

'कर्म-क्लेशों' से छुटकारा पाना होगा, चार 'पापों के स्थानों' से बचना होगा और सम्पत्ति के विनाश के छह 'अपायमुखों' (विनाश के कारणों) को बन्द करना होगा।

चार 'कर्म-क्लेश' हैं : प्राणातिपात (हिंसा), अदत्तादान (चोरी) मूषावाद (झूठ) और काममिथ्याचार।

चार 'पापों के स्थान' हैं : लोभ, द्वेश, मोह और भय।

धन के विनाश के छह अपायमुख हैं : मादक द्रव्यों का सेवन, रात्रिविहार, समज्या (नाच-तमाशे) का सेवन, जूआ, बुरे लोगों का संग-साथ आलस्य में फँसकर कर कर्तव्यच्युत होना।

चार कर्म-क्लेशों से छूटकर, चार पाप स्थानों से बचकर, धन के विनाश के छह अपायमुखों को बन्दकर बुद्ध के शिष्य सत्य की छह दिशाओं की वन्दना करते हैं।

अब सत्य की छह दिशाएँ कौन-सी हैं? पूर्व माता-पिता की दिशा है, दक्षिण आचार्यों की दिशा है, पश्चिम पति-पत्नी की दिशा है, उत्तर मित्र-अमात्यों की दिशा है, नीचे की दिशा दास-कर्मकरों की है और ऊपर की दिशा श्रमण-ब्राह्मणों की है।

प्रथम पुत्र को पाँच प्रकार से माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। माता-पिता का भरण-पोषण करना चाहिए, घर के काम में उनकी सहायता करनी चाहिए, कुल-वंश कायम रखना चाहिए, दायज का प्रतिपादन करना चाहिए और मृतकों का श्राद्ध करना चाहिए।

सर्वप्रथम, पूर्वी दिशा के मार्गानुसार पुत्र-पुत्री के पाँच प्रकार के कर्म करने चाहिए अपने माता-पिता का भरण-पोषण, उनक लिए श्रम, वंश की रक्षा, दायज का प्रतिपादन, और पित्रों का श्राद्ध।

बदले में माता-पिता को पुत्र-पुत्री के लिए पाँच प्रकार के कर्म करने चाहिए उन्हें पाप से बचाना, पुण्य कर्मों के लिए प्रेरित करना, शिल्प आदि की शिक्षा प्रदान करना, विवाह करवाना और यथासमय दायज का निष्पादन करना। यह पाँच बातें माता-पिता रूपी पूर्वी दिशा के मार्ग को शान्त और प्रसन्न रखती हैं।

फिर, गुरु-शिष्य के मार्गानुसार शिषय को गुरु के आगमन पर उठकर स्वागत करना चाहिए, अच्छी तरह सेवा करनी चाहिए, आज्ञापालन करना चाहिए, गुरु दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए और आदरपूर्वक शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

बदले में गुरु को चाहिए कि वह शिष्य को सही आचार विचार रखते हुए मार्ग दर्शन दें, जो स्वयं सीखा है उसे सिखाएँ और शिष्य के लिए

लाभ, आदर और प्रशंसा प्राप्ति का मार्ग सुलभ करें। इस प्रकार गुरु शिष्य संम्बंध से जुड़ी दक्षिण दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

फिर, पति-पत्नि के सम्बन्ध से जुड़ी पश्चिम दिशानुसार, पति को पत्नी के प्रति सम्मान, भद्रता और निष्ठा से व्यवहार करना चाहिए। पत्नी को निर्णय शक्ति देते हुए उपहार भेंट करने चाहिए। पत्नी को चाहिए कि वह सभी काम सही प्रकार करे, परिवारजनों की आवश्यकताओं का ध्यान रखे, पतिव्रता हो परिवार की सम्पत्ति की रक्षा करे और परिवारिक काम-काज में दक्ष हो। इस प्रकार पश्चिमी दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

फिर मित्र-रूपी दिशा उत्तर दिशा की बात करें तो मित्रों के अभाव की पूर्त्ति मैत्रिपूर्ण वचन, उनके लाभ हेतु श्रम, विचारशील और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, और उनके प्रति सच्चाई–यह सब करना चाहिए।

कुमार्ग से मत्रों की रक्षा, कुमार्ग में पड़ने पर उनकी सम्पत्ति की रक्षा, उनकी कठिनाइयों को ध्यानपूर्वक सुनना, कठिन समय में सहायता करना और आवश्यकता पड़ने पर उनके परिवार का भरण-पोषण करना–इन सब से उत्तर दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

इसके बाद, मालिक और दास-रूपी निचली दिशा के मार्गानुसार मालिक को सेवकों से व्यवहार में पाँच बिंदुओं का पालन करें: सेवकों के बलानुसार काम देना, उन्हें अच्छा भोजन और पर्याप्त वेतन प्रदान

करना, उत्तम भोजन उनसे बाँटकर खाना, और उचित समय पर अवकाश देना, बदले में सेवक को मालिक की सेवा करते हुए इन बातों का पालन करना चाहिए: मालिक से पहले बिस्तर से उठना, मालिक के सो जाने के बाद सोना, ईमानदारी रखना, अपने काम में कुशल होना, और मालिक की कीर्ति को बढ़ाना। इस प्रकार निचिली दिशानुसार मालिक-सेवक के संबंध शान्त और प्रसन्न रहेंगे।

फिर, ऊपर की दिशा जो कि धर्म गुरु/श्रमणों की है—की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए, काया (शरीर), वाचा (वचन) और मन से श्रद्धापूर्वक उनकी सेना करना, अगामन पर उनका आदर-सत्कार करना, उनकी शिक्षा को सुनना और उसका पालन करना, और उन्हें भेंट दक्षिणा देना।

बदले में गुरु/श्रमण को पाप का त्याग, पुण्य का संचय, करुणामय हृदय रखना धर्म मार्ग दिखलाना, शिक्षा को पूर्णता से सिखाना, और उन्हें शान्ति की प्राप्ति करवाना—इस प्रकार शिक्षा प्रदान करने वालों की ऊपरी दिशानुसार शान्त और दु:ख-रहित रहेगी।

छह दिशाओं की वन्दना करनेवाला मनुष्य बाहरी संकटों को रोकने के लिए ऐसा आचरण नहीं करता। वह अपने मन से पैदा होनेवाली विपत्तियों से बचाव हेतु सावधान रहने के लिए दिशाओं की वन्दना करता है।

2. मनुष्य को इस बात का विवेक करना चाहिए कि किसके साथ मित्रता करे और किसके साथ न करे।

चार तरह के लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिए-जो लोभी हों, बातें करने में होशियार हों, खुशामदी हों आर फुजूलखर्च हों।

चार तरह के लोगों से मित्रता करनी चाहिए–जो सहायक हों, जो सुख-दु:ख दोनों के साथी हों, जो अच्छे परामर्शदाता हों तथा जो सहानुभूतिशील हों।

जो हमें अप्रामाणिक बनने या बुराई से रोकता है, हमारे पीछे हमारी चिंता करता है, विपत्ति में हमें सान्त्वना देता है, आवश्यकता पड़ने पर सहायता किए बिना नहीं रहता, गुह्य बात को गुह्य रखता है और सदा सन्मार्ग की ओर ले चलता है, ऐसे के साथ ही मित्रता करनी चाहिए।

ऐसा मित्र पाना आसान नहीं। स्वयं भी सन्मित्र बनने के लिए कठिन प्रयास करना चाहिए। भला आदमी अपने सदाचार के कारण इस संसार में सूर्य के समान चमकता है।

3. कितनी ही सेवा करने पर भी माता-पिता का ऋण चुकाया नही जा सकता। यदि कोई दाहिने कंधे पर पिता को और बाएँ कंधे पर माता को बिठाकर सौ वर्ष चलता रहे, तो भी उनके उऋण नहीं हो सकता।

और भी, यदि सौ वर्ष तक सुगंधित द्रव्यों से माता-पिता को नहलाए, हर प्रकार से उनकी भक्ति भाव से सेवा करे, अथवा माता-पिता को

राजसिंहासन पर बिठाने के लिए प्रयत्नकर संसार के सभी भोग उनके लिए सुलभ कर दे, तो भी उनके ऋण मुक्त नहीं हुआ जा सकता।

किन्तु यदि कुलपुत्र माता-पिता का मार्गदर्शन कर बुद्ध के उपदेशों के प्रति उनमें श्रद्धा पैदा करे, मिथ्याधर्म का त्यागकर सद्धर्म का अनुसरण करने के लिए प्रवृत्त करे और लोभ का त्याग कर दान में आनंद अनुभव करने के लिए प्रेरित कर सके, तो वह उनके ऋण से मुक्त हो सकेगा; अथवा यों भी कह सकते हैं कि उसने बहुत कर दिखाया।

4. परिवार एक ऐसी जगह है जहाँ हृदयों का परस्पर बहुत निकट संबंध होता है। यदि ये हृदय एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो वह घर पुष्प-वाटिका के समान सुन्दर बन जाता है। किन्तु यदि इन हृदयों में सुसंवाद नष्ट हो जाता है, तो तीव्र संघर्ष और झगड़े पैदा होकर वह घर नष्ट होने की नौबत आ जाती है।

ऐसे समय दूसरों को दोष देने की अपेक्षा पहले स्वयं आत्मपरीक्षण करना चाहिए, अपने दोष देखने चाहिए और सही रास्ता अपनाना चाहिए।

5. पुराने समय में एक बहुत श्रद्धावान युवक था। पिता की मृत्यु के बाद वह माँ के साथ अकेला सुख से रहता था। फिर उसने शादी की और माँ बेटा और बहू साथ रहने लगे।

आरंभ में तो वे सब सुख से मिल-जुलकर साथ रहे, किन्तु फिर छोटी छोटी गलतफहमियों के कारण सास और बहु में मनमुटाव पैदा होने लगा और वे एक-दूसरे का द्वेष करने लगीं। अन्त में बात यहाँ तक बढ़ी कि माँ युवा दम्पती को छोड़कर अकेली रहने दूसरी जगह चली गई।

सास के घर छोड़कर चले जाने के बाद, युवा दम्पती के लड़का पैदा हुआ। सास के कानों में अफवाह पड़ी की जवान बहू कहती है, ''मेरी सास हमेशा मुझे परेशान करती थी; जब तक साथ रही, कोई आनन्ददायी घटना नहीं घटी, किन्तु जैसे ही घर से गई, हमारे घर में यह शुभ घटना घटी।

यह सुनकर सास भभक उठी, ''इस दुनिया में सच्चाई उठ गई। पति की माँ को घर से निकाल बाहर करना शुभ घटना है, तो कहना होगा कि दुनिया उलट गई।''

फिर वह चिल्लाई, ''अब हमें इस सच्चाई की अन्त्येष्टि करनी चाहिए।'' और पागल औरत की तरह वह सच्चाई की अन्त्येष्टि करने के लिए श्मशान की ओर चल दी।

यह सुनकर एक देवता इन्द्रदेव उस स्त्री के सामने प्रकट हुए और उन्होंने उसे हर तरह से समझाने की कोशिश की, किन्तु व्यर्थ।

तब देवता इन्द्रदेव उससे बोले, ''यदि ऐसा है तो मुझे तुम्हारे पोते और

बहू को जलाकर मार डालना होगा। क्या तुम्हें इससे संतोष होगा?''

यह सुनकर सास की आँखें खुल गईं और अपने गुस्से के लिए क्षमायाचना कर उसने बच्चे और माँ की जान बताने के लिए देवता इन्द्रदेव से प्रार्थना की। उधर जवान बहू और उसके पति को बूढ़ी माँ के प्रति किए गए अन्याय का ख्याल आ गया और वे उसे वापस लाने श्मशान घाट पहुंचे। देवता इन्द्रदेव ने बहू ओर सास में मेल-मिलाप कराया और उसके बाद वे सब एक साथ सुखी परिवार के रूप में रहने लगे।

जब तक हम स्वयं सच्चाई का त्याग नहीं करते, वह अनन्त काल तक नष्ट नहीं होती। कभी-कभी लगता है कि सच्चाई नष्ट हो गई, किन्तु वास्तव में वह कभी नष्ट नहीं होती। जब तक नष्ट हुई-सी लगती है तब अपने मन की सच्चाई खो बैठने के कारण वैसा लगता है।

विसंवादी मन अक्सर महाअनर्थ पैदा करते हैं। एक मामूली-सी गलतफहमी बड़े दुर्भाग्य का कारण बन सकती है। परिवार में इस संबंध में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

6. परिवारिक जीवन में, रोज का खर्च कैसे चलाया जाए, इसका भी बहुत ख्याल रखना पड़ता है। परिवार के हर व्यक्ति को परिश्रमी चींटियों और व्यस्त मधुमक्खियों के समान लगन से परिश्रम करना चाहिए। किसी को भी दूसरों के परिश्रम पर निर्भर नहीं रहना चाहिए अथवा उनके दान की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

साथ ही मनुष्य को इस प्रकार कठिन परिश्रम से कमाई हुई संपत्ति

को केवल अपनी संपत्ति नहीं मानना चाहिए। उसमें से कुछ हिस्सा दूसरों को बाँट देना चाहिए, कुछ हिस्सा आपतकाल के लिए बचा रखना चाहिए और कुछ हिस्सा समाज के लिए और धर्म के लिए खर्च करने में आनन्द का अनुभव करना चाहिए।

सदा ध्यान रखना चाहिए कि इस संसार में जिसे 'अपना' कहा जा सके ऐसी कोई वस्तु नहीं है। सब कुछ हेतु-प्रत्यय के कारण अपने पास आ जाता है और हमारा काम उसे कुछ समय के लिए केवल अपने पास रखना ही है। इसलिए हर वस्तु का उपयोग समझ-बूझकर करना चाहिए और किसी वस्तु का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

7. जब राजा उदयन की रानी श्यामावती ने आनन्द को पाँच सौ चीवर दान किए तो आनन्द ने उस दान को सहर्ष ग्रहण किया।

जब राजा ने यह सुना तो आशंका हुई कि आनन्द ने कहीं लोभ का शिकार होकर तो दान ग्रहण नहीं किया। वह आनन्द के पास गया और उससे पूछा–''भन्ते, पाँच सौ चीवरों को एक साथ ग्रहण कर आप क्या करनेवाले हैं?''

आनन्द ने उत्तर दिया: ''हे राजा, बहुत-से भिक्षुओं के चीवर फटकर चिथड़े हो गए हैं। मैं ये चीवर उनको बाँट दूँगा।''

''तो फिर फटे हुए चीवरो का क्या करेंगे?''

''हम उनकी चादरें बनाएँगे।''

''पुरानी चादरों का क्या करेंगे?''

''उनसे हम तकियों के गिलाफ बनाएँगे।''

पुराने गिलाफों का क्या करेंगें?''

''उनको फश पर बिछाने के लिए काम में लाएँगे।''
''पुराने बिछायतों का आप क्या करेंगे?''
''पायंदान के लिए उनका उपयोग करेंगे?''
''पुराने पायंदाजों का क्या करेंगे?
''हम उन्हें फर्श के लिए झाड़न के रूप में काम में लेंगे।''
''पुराने झाड़नों का क्या करेंगे?''
''महाराज, हम उनके टुकड़े-टुकड़े करेंगें, कीचड़ को घर की दीवारों के पलस्तर के काम में लेंगे।''

हमें सौंपी गई हर वस्तु का समझ-बूझकर ठीक उपयोग करना चाहिए, क्योंकि वह 'हमारी' नहीं हैं, कुछ समय के लिए हमें सौंपी गई धरोहर है।

8. पति-पत्नी का संबंध पारम्परिक सुविधा के लिए ही नहीं बनाया गया है। इसका दो शरीरों के एक घर में साथ रहने से कहीं अधिक महत्त्व हैं पति और पत्नी को चाहिए कि वे अपने निकट संबंध का लाभ उठाकर सद्धर्म के द्वारा अपने मनों को परिष्कृत करने में एक-दूसरे की सहायता करें।

आदर्श पति-पत्नी के रूप में जिनकी ख्याति हो चुको थी ऐसे एक बूढ़े दंपती एक बार बृद्ध के पास आए और कहने लगे, ''भगवान्, हम लोग बचपन में एक-दूसरे से परिचित होकर विवाहबद्ध हुए और अब तक हमारी एक-दूसरे के प्रति निष्ठा कभी नहीं डगमगाई। कृपया बताएँ कि क्या अगले जन्म में भी हम इसी प्रकार एकनिष्ठ पति-पत्नी का जीवन व्यतीत कर पाएँगे?''

भगवान ने उन्हें उत्तर दिया, ''अगर तुम दोनों की श्रद्धा अभिन्न हो, एक ही उपदेश का ग्रहणकर, एक ही समान मन को परिष्कृतकर, एक ही समान दान-पुण्यकर प्रज्ञा का एक-सा विकास करो तो अगले जन्म में भी आज के समान एकहृदय से जी सकोगे।''

9. निर्वाण के मार्ग में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता। यदि स्त्री भी निर्वाण-प्राप्ति की कामना करे तो वह 'निर्वाण की कामना करनेवाली कहलाएगी।

राजा प्रसेनजित की कन्या, अयोध्या की रानी श्रीमाला भी निर्वाण की कामना करनेवाली नारी थी। उसे भगवान के उपदेश में गहरी श्रद्धा थी, इसलिए भगवान के समक्ष उसने ये दस प्रतिज्ञाएँ कीं :

''भगवान, अब से सम्यक्संबोधि प्राप्त करने तक में (1) स्वीकृत शीलों का उलंघन नहीं करूँगी। (2) गुरुजनों का अनादर नहीं करूँगी। (3) किसी भी प्राणी प्रति मन में क्रोध की भवना पैदा नहीं होने दूँगी। (4) दूसरों के रूप या आकार और उनकी संपत्ति के प्रति ईर्ष्या नहीं करूँगी। (5) हृदय के संबंध में भी और वस्तुओं के बारे में भी मैं कभी कंजूसी नहीं करूँगी। (6) मैं अपने लिए संपत्ति का संचय नहीं करूँगी, अपितु उसका उपयोग गरीबों की सेवा करके उन्हें सुखी बनाने के लिए करूँगी। (7) दान देना, प्रियवचन बोलना, परोपकारी आचरण करना और दूसरे की परिस्थिति का ख्याल करके सोचना आदि करते हुए भी यह सब मैं अपनी खातिर नहीं करूँगी; बिशुद्ध मन से, बिना थके, निर्बाध मन से मैं प्राणियों के मन का परिष्कार करने का कार्य करती रहूँगी। (8) यदि कोई अकेला, कैद में फँसा हुआ, रोग से पीड़ित, दु:खी आदि

विविध प्रकार के कष्टों में पड़ा हुआ आदमी दिखाई दे, तो उसे उन कष्टों का कारण और नियम समझाकर शांति प्रदान करके उसके कष्ट दूर करूँगी। (9) यदि मैं मनुष्यों को जीवित प्राणियों को पकड़कर उनके साथ क्रूर व्यवहार करते देखूँ या धर्म-विनय का उल्लंघन करते देखूँ, तो दण्ड के पात्र लोगों को मैं दण्ड दूँगी, शिक्षा के योग्य लोगों को शिक्षा दूँगी और यथाशक्ति उन्हें पापकर्मों से परावृत्त करने का प्रयास करूँगी। (10) सद्धर्म का परिग्रह करके मैं कभी उसका विस्मरण नहीं होने दूँगी। जिसे सद्धर्म का विस्मरण हो जाता है, वह सर्वत्र व्यापक धर्म से च्युत हो जाता है और निर्वाण के तट पर पहुँच नहीं पाता।

''मैं फिर इन अभागे लोगों का उद्धार करने के लिए और तीन प्रतिज्ञाएँ करती हूँ :

(1) मैं इस सत्य प्रतिज्ञा के द्वारा सभी प्राणियों को शांति प्रदान करूँगी। और फिर उस कुशलमूल के कारण, कैसा भी जन्म पाकर, उस जन्म में सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लूँगी।

(2) सद्धर्म का ज्ञान प्राप्तकर मैं बिना थके या आराम किए सभी प्राणियों को उसका उपदेश करूँगी।

(3) मैं अपने शरीर, जीवन या संपत्ति का त्याग करके भी इस सद्धर्म की रक्षा करूँगी।

पारिवारिक जीवन की सार्थकता इसी में है कि उसमें निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ने के लिए परस्पर प्रोत्साहन और सहायता दी जा सकती है।

स्त्री निर्वाण-पथ पर आगे बढ़ने का निश्चय कर श्रीमालादेवी के समान महान प्रतिज्ञाएँ कर सके तो सचमुच वह भी बुद्ध की उत्तम शिष्या बन सकेगी।

द्वितीय अध्याय

बुद्धक्षेत्र का निर्माण

1
आपस का मेलजोल

1. मान लीजिए कि एक घने अंध:कार में डूबा हुआ बंजर है, जिसमें अनेक जीव बड़ी संख्या में दिशाहीन भटक रहे हैं।

स्वाभाविक है कि वे भयभीत होंगे और जब वे एक दूसरे को पहचाने बिना रात्रि में भटकेंगे, तो वे छटपटाएँगे और अकेलापन अनुभव करेंगे। यह सचमुच एक दयनीय दृश्य है।

फिर कल्पना कीजिए कि वहाँ एक महान् व्यक्ति हाथ में मशाल लेकर प्रकट होता है और पास-पड़ोस उज्ज्वल और स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

तब अब तक अँधेरे में छटपटाते हुए प्राणी खड़े होकर इधर-उधर देखने लगते हैं और जब उन्हें आसपास अपने जैसे ही असंख्य प्राणी दिखाई देते हैं तब आश्चर्यचकित होकर वे हर्षध्वनि करते हुए दौड़े-दौड़े एक-दूसरे के पास जाकर गले लगते हैं और ज़ोर-ज़ोर से बातें कर अपना हर्ष प्रकट करते हैं।

इस दृष्टान्त में बंजर मनुष्य-जीवन है, घने अन्धकार का अर्थ है निर्मल प्रज्ञा

की किरणों का अभाव। जिनके हृदय में प्रज्ञा की किरणें नहीं होतीं वे अकेले और भयभीत भटकते रहते हैं। वे पैदा भी अकेले होते हैं और अकेले मरते हैं। वे अपने आसपास के मनुष्यों में घुलमिलकर शांति से मिलजुलकर रहना नहीं जानते और इसीलिए निराश और भयभीत रहते हैं।

'महान व्यक्ति मशाल लेकर प्रकट हुआ' का मतलब है बुद्ध मनुष्य का रूप धारणकर, अपनी प्रज्ञा और करुणा से संसार को प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकाश में लोग अपने-आपको तथा दूसरों को पहचान पाते हैं और उनके साथ भाईचारा और मैत्री-संबंध स्थापित करने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

हजारों लोग समाज में एक साथ रहें किन्तु उनमें तब तक सच्चा भाईचारा नहीं होगा जब तक कि वे एक-दूसरे को न जानें और उनमें परस्पर सहानुभूति की भावना न हो।

सही समाज में उसे उज्ज्वल करनेवाली श्रद्धा और प्रज्ञा होती है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ लोग एक-दूसरे को जानते हैं और परस्पर विश्वास करते हैं और जहाँ सामाजिक सामंजस्य होता है।

वास्तव में, सामंजस्य ही सही समाज या संगठन का प्राण होता है।

2. संगठन भी तीन प्रकार के होते हैं। पहला, उन लोगों का संगठन जो कि बड़े नेताओं की सत्ता, संपत्ति और अधिकार के आधार पर संगठित हुए हैं।

दूसरा, उन लोगों का संगठन है जो केवल अपनी-अपनी सुविधा के खातिर एकत्रित हुए हैं; और यह संगठन तब तक चलेगा जब तक कि उसके सदस्यों की सुविधाओं में बाधा न पड़े और वे आपस में लड़ने न लगें।

तीसरा, उन लोगों का संगठन है जो किसी अच्छे उपदेश को केन्द्र-बिन्दु बनाकर एकत्रित हुए हैं और सामंजस्य ही जिसका प्राण है।

वास्तव में, इन तीनों में तीसरा संगठन ही सही संगठन है, क्योंकि उसके सदस्य एक हृदय होकर रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एकतानता और विविध अच्छाइयाँ पनपती रहती हैं। ऐसे संगठन में सामंजस्य, संतोष और सुख विपुलता से होंगे।

और जैसे पर्वत पर हुई वर्षा बहकर छोटा-सा झरना बनती है और फिर धीरे-धीरे बड़ी नदी बनकर महासागर में प्रवेश करती है।

वैसे ही भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पले हुए लोग भी, एक ही उपदेश की वर्षा में भींगकर, एकहृदय होकर, धीरे-धीरे छोटे संगठन से बड़े समाज की ओर प्रवाहित होते हुए अन्त में निर्वाण के महासागर में विलीन हो जाते हैं।

सबके हृदय दूध और पानी के समान घुल-मिल जाते हैं और फिर वहाँ एक सुन्दर संगठन पैदा होता है।

अतः सद्धर्म ही सचमुच इस संसार में सुन्दर और सही संगठन का निर्माण करनेवाली मूलभूत शक्ति है और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह लोगों को एक-दूसरे को पहचानने, एक-दूसरे के अनुकूल बनने और उनके विचारों के ऊबड़-खाबड़ स्थानों को समतल बनाने की शक्ति देनेवाला प्रकाश है।

इस प्रकार बुद्ध के उपदेशों पर आधारित संगठन को संघ कहा जा सकता है।

सभी लोगों को इन उपदेशों का पालन करना चाहिए और उनके अनुसार चित्त की साधना करनी चाहिए। इस प्रकार बृद्ध के संघ में यों तो हर किसी का समावेश होगा, किन्तु वास्तव में जिनकी धार्मिक श्रद्धा एक ही है ऐसे लोग ही उसके सदस्य होंगे।

3. बुद्ध के इस वास्तविक संघ में दो प्रकार के सदस्य होंगे : उपासकों को उपदेश करनेवाले भिक्षु और बदले में भिक्षुओं को अन्न और वस्त्र दान करनेवाले उपासक। ये दोनों मिलकर धर्म का प्रचार करेंगे और उसे स्थायी बनाएँगे।

फिर, संघ को परिपूर्ण बनाने के लिए, उसके सदस्यों में पूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। भिक्षु उपासकों का उपदेश देते हैं और उपासक उस उपदेश को ग्रहण कर उसमें श्रद्धा करते हैं, इसलिए दोनों में सामंजस्य पैदा हो सकता है।

संघ के सदस्यों को आपस में प्रेम और भाईचारे से मिलना-जुलना चाहिए, साथी उपासकों के साथ रहने में आनन्द अनुभव करना चाहिए और दूसरों के साथ एकहृदय बनने का प्रयास करना चाहिए।

4. संघ में सामंजस्य पैदा करने में छह बातें सहायक सिद्ध होंगी। वे हैं : पहली, करुणामय वचन बोलना; दूसरी, करुणामय आचरण करना; तीसरी, करुणामय भावना रखना; चौथी, मिली हुई वस्तु आपस में बाँटना; पाँचवीं, समान पवित्र शीलों को पालन करना और छठी, परस्पर सम्यक्-दृष्टि रखना।

इनमें सम्यक्-दृष्टि केन्द्र में हैं, जो दूसरी पाँच बातों को वेष्टित करती है।

संघ की उन्नति के लिए आवश्यक सात-सात नियमों के दो समूह हैं। पहला समूह है :

(1) भिक्षुओं को बार-बार उपदश सुनने के लिए इकट्टा होना चाहिए और उनपर चर्चा करनी चाहिए।

(2) वे खुले दिल से आपस में मिलेंगे और एक-दूसरे का आदर करेंगे।

(3) वे निर्धारित भिक्षु-नियमों का आदर करेंगे और उनमें अकारण परिवर्तन नहीं करेंगे।

(4) बृद्ध और युवा सदस्य एक-दूसरे क साथ शिष्टता से व्यवहार करेंगे।

(5) अपने चित्त की रक्षा कर, सच्चाई और विनय को अपना लक्ष्य बनाएँगे।

(6) किसी शान्त स्थान में रहकर वे अपने आचरण को शुद्ध करेंगे और दूसरे आदमी को आगे रखकर और स्वयं पीछे रहकर मार्ग का अनुसरण करेंगे।

(7) सभी लोगों से प्यारकर, अतिथियों का हार्दिक आदर-सत्कार करेंगे और रोगियों की अच्छी सेवा-शुश्रूषा करेंगे।

इन सात नियमों का पालन करने से संघ की कभी हानि नहीं होगी।

दूसरा समूह है : (1) अपने चित्त की पवित्रता को बनाए रहेंगे और आवश्यकता से अधिक वस्तुओं की माँग नहों करेंगे। (2) सत्यनिष्ठा को कायम रख लोभ को हटाएँगे। (3) सहनशील होंगे और विवाद नहीं करेंगे। (4) चुप बैठेंगे और व्यर्थ बकवाद नहीं करेंगे। (5) नियमों का पालन करेंगे और उद्धत नहीं होंगे। (6) एक ही धर्म की रक्षाकर दूसरे धर्मों का अनुसरण नहीं करेंगे। (7) दैनिक जीवन में मितव्ययी होकर वस्त्र और आहार में सादगी बरतेंगे।

इन सात नियमों का पालन करने से संघ की कभी हानि नहीं होगी।

5. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सामंजस्य ही संघ का प्राण है, सामंजस्यरहित संघ-संघ नहीं कहा जा सकता। अत: इस बात के लिए

प्रयत्नशील रहना चाहिए कि मनमुटाव पैदा न हो और यदि हो तो तुरन्त दूर किया जाए।

खून के धब्बे खून से धोए नहीं जा सकते, वैर का निराकरण वैर से कभी नहीं किया जा सकता। वैर को भूल जाने से ही उसका निराकरण हो सकता है।

6. पुराने समय में दिधीति नाम का एक राजा था। पड़ोस से युद्धप्रिय राजा ब्रह्मदत्त ने उसका राज्य छीन लिया। राजा दिधीति कुछ समय अपनी रानी और राजकुमार के साथ छिपा रहा, किन्तु शत्रुओं ने उसे पकड़ लिया। सौभाग्य से राजकुमार अकेला किसी तरह भाग गया।

राजकुमार ने अपने पिता को बचाने के लिए कुछ उपाय ढूँढने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ। अपने पिता की फाँसी के दिन, राजकुमार भेस बदलकर वध-भूमि तक गया, किन्तु अश्रु बहाते हुए, अपने अभागे पिता की मृत्यु को देखने के सिवा और कुछ नहीं कर सका।

पिता ने पुत्र को भीड़ में देखा और इस तरह बुदबुदाया मानों स्वगत बोल रहा हो, ''अंगारों को मत सहेजो, जल्दबाजी न करो, वैर का शमन केवल अवैर से ही होता है।''

इसके बाद दीर्घकाल तक राजकुमार जी-जान से बदला लेने का उपाय ढूँढता रहा। आखिर अवसर पाकर उसने राजा ब्रह्मदत्त के महल में सेवक की नौकरी पा ली और देखते-देखते उसका कृपापात्र बन गया।

एक दिन जब राजा शिकार खेलने गया, तब राजकुमार ने बदला लेने का अवसर ढूँढ निकाला। वह राजा को उसकी सेना से अलगकर अकेला अपने साथ जंगल में भटकाता रहा। राजा इतना थक गया कि जिसके ऊपर उसका पूर्ण विश्वास था उस राजकुमार की गोद में सिर रखकर आराम से सो गया।

राजकुमार ने अपनी कटार निकाली और राजा के गले पर रख दी, किन्तु उसी क्षण उसे अपने पिता के अंतिम वचन याद आए और उसके बाद कई बार प्रयत्न करने पर भी वह राजा की हत्या न कर पाया। यकायक राजा की नींद खुल गई और उसने राजकुमार से कहा कि उसने एक दु:स्वप्न देखा जिसमें दिधीति राजा का पुत्र उसे मारने का प्रयत्न कर रहा था।

राजकुमार ने राजा को दबोचकर कटार घूमते हुए अपना नाम बताया और कहा कि आखिर आज पिताजी की हत्या का बदला लेने का समय आ गया है। किन्तु वह राजा का मार न सका और कटार को फेंककर उसके चरणों पर गिर पड़ा।

जब राजा ने राजकुमार की आपबीती और दिधीति राजा के अन्तिम वचन सुने तब वह बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने राजकुमार से क्षमा माँगी। बाद में उसने राजकुमार को उसका राज्य लौटा दिया और उन दोनां के राज्यों में दीर्घकाल तक मैत्रीभाव बना रहा।

दिधीति राजा के अंतिम वचन, ''अंगारों को मत सहेजो'' का अर्थ है कि वैर को दीर्धकाल तक नहीं रखना चाहिए। और ''जल्दबाजी न करो'' का अर्थ है, मित्रता को जल्दी से तोड़ना नहीं चाहिए।

वैर का शमन वैर से नहीं होता, उसे भूल जाने से ही उसका शमन होता है।

सामंजस्य पर आधारित संघ में, हर व्यक्ति को सदा इस कथा का भाव ग्रहण करना चाहिए।

केवल संघ के सदस्यों को ही नहीं, अपितु साधारण लोगों को भी अपने दैनिक जीवन में इसका भाव ग्रहणकर उस पर आचरण करना चाहिए।

2
बुद्ध का क्षेत्र

1. जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, यदि संघ बुद्ध के उपदेश को फैलाने का और मिलजुलकर रहने का अपना कर्त्तव्य भूल न जाए, तो वह धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा और उसका उपदेश अधिक दूर तक फैलता जाएगा।

इसका यह अर्थ हुआ कि अधिकाधिक लोग निर्वाण की साधना करने लगेंगे और उसके कारण अविद्या और आसक्तिरूपी मार द्वारा संचालित लोभ, क्रोध और मूढ़ता की मार-सेनाएँ पीछे हटने लगेंगी और संसार में

प्रज्ञा, प्रकाश, श्रद्धा और आनन्द का राज्य स्थापित होगा।

मार का राज्य लोभ, अंधकार, संघर्ष, युद्ध, तलवारों और रक्तपात से भरा हुआ है और ईर्ष्या, द्वेष, छल, चापलूसी, उकुरसुहाती, छिपाव और गाली-गलौज से भरपूर है।

मान लीजिए कि उसी राज्य में प्रज्ञा का प्रकाश फैलता है, करुणा की वर्षा होती है, श्रद्धा मूल पकड़ने लगती है आर आनन्द के फूल विकसित होकर सुगंध फैलाने लगते हैं। तब मार का राज्य क्षण-भर में बुद्ध के क्षेत्र में परिवर्तित हो जाएगा।

जैसे मन्द शीतल पवन और घास पर खिला हुआ एक छोटा-सा फूल बसंत के आगमन की सूचना देते हैं, वैसे ही एक आदमी निर्वाण प्राप्त करे तो वानस्पतिक सृष्टि, पर्वत, नदियाँ और धरती सभी एकसाथ बुद्ध का क्षेत्र बन जाते हैं।

यदि मनुष्य का हृदय शुद्ध हो जाए, तो उसके आसपास का वातावरण भी शुद्ध हो जाता है।

2. जिस भूमि पर सद्धर्म का प्रभाव होता है, वहाँ रहनेवाले हर व्यक्ति का मन शुद्ध और शांत होता है। सचमुच, बुद्ध की करुणा सतत सभी लोगों को लाभ पहुँचाती रहती है और उसकी उज्ज्वल प्रभा उनके मन से सभी प्रकार की अशुद्धियाँ दूरकर पवित्र कर देती हैं।

पवित्र ऋजु मन ही गहन मन, निर्वाण-प्राप्ति के अनुकूल मन,

दानशील मन, शीलों का पालन करनेवाला मन, सहिष्ण् मन, उत्साही मन, शांत मन, प्रज्ञावान मन, करुणामय मन और विविध उपाय कौशल्यों से लोगों को निर्वाण-प्राप्ति करानेवाला मन बन जाता है। और इसी प्रकार बुद्धक्षेत्र का शानदार निर्माण किया जाता है।

पत्नी और बच्चों के साथ रहते हुए भी गृहस्थ का वह घर बुद्ध का शानदार निवासस्थान बन जाता है, उसी प्रकार सामाजिक भेदभावों से पीड़ित देश भी भाईचारे और बंधुभाव में परिवर्तित हो जाता है।

वास्तव में लोभ के कीचड़ में फँसे हुए मनुष्य द्वारा निर्मित राजभवन में बुद्ध निवास नहीं करते। छत की दरारों में से चंद्र का प्रकाश चूता हो ऐसी छोटी-सी कुटिया भी, यदि उसका स्वामी ऋजुहृदय हो, तो बुद्ध का निवासस्थान बन सकता है।

बुद्ध के क्षेत्र का निर्माण एक ही मनुष्य के पवित्र हृदय द्वारा हुआ हो तो भी, वह एक पवित्र मन दूसरे समान श्रद्धावाले मनुष्यों को आकर्षित करता हुआ साथियों की संख्या बढ़ाता जाता है। बुद्ध के प्रति श्रद्धा व्यक्ति से परिवार, परिवार से गाँव, गाँव से नगरों, शहरों देशों और अन्त में सारे संसार में फैल जाती है।

सचमुच, धर्म के उपदेश का पालन और निष्ठा से प्रचार करना ही, बुद्ध के क्षेत्र का विस्तार करते जाना है।

3. सचमुच एक दृष्टि से देखा जाए तो यह दुनिया अपने सारे लोभ, अन्याय, और रक्तपात के कारण शैतान की दुनिया-सी लगती है, किन्तु जैसे ही लोग बुद्ध की सम्यक्संबोधि में श्रद्धा करने लगेंगे, रक्त दूध में बदल जाएगा और लोभ करुणा में और फिर वही शैतान की दुनिया बुद्ध का पवित्र क्षेत्र बन जाएगी।

एक चम्मच लेकर महासागर को खाली करना असंभव-सा लगता है। किन्तु पुनः-पुनः जन्म लेकर भी इस कार्य को पूरा करेंगे, यह बुद्ध में श्रद्धा करनेवालों के हृदय की प्रार्थना होती है।

बृद्ध उस पार खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस पार का अर्थ है निर्वाण की दुनिया, जहाँ लोभ, क्रोध, मूढ़ता, दुःख और व्यथा नहीं होती, अपितु जहाँ केवल प्रज्ञा का प्रकाश और करुणा की वर्षा होती है।

यह भूमि दुःख और व्यथा से पीड़ित और कष्ट पानेवाले लोगों को शांति देनेवाली, शरण देनेवाली भूमि है; धर्मप्रचार से क्षणिक विराम करनेवालों के लिए विश्राम का स्थान है।

इस क्षेत्र में अपरिमित प्रभा और अनन्त जीवन है। इसका आश्रय लेने के बाद कभी भ्रान्ति के संसार में लौटना नहीं पड़ता।

सचमुच वह बुद्धक्षेत्र, जहाँ प्रज्ञारूपी पुष्प वायुमंडल को सुगंधित करते

हैं और पक्षी धर्म का गायन करते हैं, सारी मानव-जाति का अन्तिम गन्तव्य है।

4. वह सुखावती बुद्धक्षेत्र विश्रामस्थली तो है, परन्तु आरामतलबी का स्थान नहीं। वहाँ की सुगंधित पुष्पशय्याएँ आराम से सोने के लिए नहीं हैं। वह तो आराम करके तरोताजा होकर निर्वाण-प्राप्ति के बुद्ध के कार्य का आगे चलाने के लिए फिर से शक्ति और उत्साह प्राप्त करने का स्थान है।

बुद्ध के जीवनकार्य का कोई अन्त नहीं है। जब तक मनुष्य रहेंगे, जीवसृष्टि का अस्तित्व होगा और जब तक स्वार्थी और अपवित्र मन अपने-अपने जगत और परिस्थितियाँ निर्माण करते रहेंगे, तब तक बुद्ध के जीवनकार्य का अन्त नहीं होगा।

इस समय बुद्ध की सामर्थ्य से भवसागर पार करके जिन्होंने सुखावती बुद्धक्षेत्र में प्रवेश कर लिया है, वे बुद्ध के पुत्र पुनः अपने-अपने कर्मसंबंधोंवाली दुनिया में लौटेंगे और वहाँ बुद्ध के कार्य में भाग लेंगे।

एक छोटी-सी दीपशिखा, एक के बाद एक दूसरे दीपकों को निरन्तर जलाती रहेगी, वैसे ही बुद्ध के करुणामय हृदय की दीपशिखा मनुष्यों के हृदय-दीपकों को एक के बाद एक निरन्तर प्रज्वलित करती रहेगी।

बुद्ध के पुत्र भी, बुद्ध की करुणा की भावना को समझकर निर्वाण और विशुद्धीकरण के बुद्ध के कार्यभार को उठा लेते हैं और उसे अगली

पीढ़ियों को सौंप देते हैं ताकि बुद्ध के परम पवित्र क्षेत्र की शोभा और महिमा सदा के लिए और अनन्तकाल तक बनी रहे।

3
बुद्ध के क्षेत्र के आधार-स्तम्भ

1. राजा उदयन की पटरानी श्यामवती की बुद्ध के प्रति गहरी श्रद्धा थी।

वह राजमहल के अन्त:पुर में ही रहती और कहीं बाहर नहीं जाती थी, किन्तु उसकी कुब्जा दासी उत्तरा, जिसकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र थी, बाहर जाती और भगवान् के प्रवचन सुना करती।

लौटकर वह दासी भगवान् के वचन अक्षरश: रानी को सुनाती थी और इस कारण रानी की श्रद्धा-भक्ति गहरी होती गई।

राजा की दूसरी पत्नी मार्गदिया श्यामावती से बहुत ईर्ष्या करती थी और किसी तरह उसकी हत्या करना चाहती थी। उसने श्यामावती के खिलाफ राजा के कान भरने शुरु किए और अन्त में उस पर विश्वास कर राजा ने अपनी पटरानी श्यामावती की हत्या करने की ठानी।

उसी समय श्यामावती राजा के सामने इतनी शांति से खड़ी हो गई कि राजा उसकी मैत्रीभावना से प्रभावित होकर उस पर बाण छोड़ न सका। अपने-आपको सँभालकर अविश्वास करने के लिए उसने रानी से क्षमा माँगी।

मार्गदिया की ईर्ष्याग्नि और भी भड़की और उसने राजा को अनुपस्थिति

में दुष्ट को भेजकर अन्त:पुर में आग लगवा दी। रानी अचंभित न हुई, न डरी और घबराकर चिल्लानेवाली अपनी सखियों को उपदेशकर उसने सान्त्वना दी, और फिर भगवान् बुद्ध से उसने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसके अनुसार शांति से अपने प्राण छोड़े। कुब्जा उत्तरा भी उसके साथ जलकर मर गई।

श्यामावती मैत्री-ध्यान करनेवाली उपासिकाओं में श्रेष्ठ है; बहुश्रुत उपासिकाओं में उत्तरा श्रेष्ठ है, इस प्रकार उनकी ख्याति हो गई।

2. शाक्य-वंशीय राजा महानाम को, जो कि भगवान् बुद्ध का चचेरा भाई था, बुद्ध के धर्म में गहरी श्रद्धा थी और वह उनके बहुत श्रद्धालु अनुयायियों में से था।

उस समय कोसल के बिडूडभ नाम के एक अत्याचारी राजा ने शाक्यों को जीत लिया। महानाम विडूडभ के पास गया और उसने अपनी प्रजा के प्राणों की भीख माँगी, किन्तु राजा ने उसकी बात नहीं मानी। तब महानाम न सुझाया कि जब तक वह निकट के तालाब में पानी में डूबा रहे तब तक राजा जितने कैदी भाग सकें उन्हें भाग जाने दे।

राजा ने यह सोचकर इसे स्वीकार कर लिया कि वह तो बहुत ही थोड़ी देर पानी के नीचे रह सकेगा।

जैसे ही महानाम ने पानी में डुबकी लगाई, गढ़ के दरवाजे खोल दिए गए और लोग जान लेकर बाहर भागने लगे। किन्तु महानाम बाहर निकला ही नहीं। उसने तालाब के अन्दर अपने केश खोलकर बेंत की जड़ से बांध दिए और अपना बलिदान देकर लोगों की जान बचाई।

3. ऋद्धिमती भिक्षुश्राविकाओं में उत्पलवर्णा श्रेष्ठ थी और माद्गल्यायन से उसकी तुलना की जाती थी। वह सचमुच भिक्षुणियों में सर्वश्रेष्ठ थी और उन्हें सदा अथक उपदेश करनेवाली उनकी नेता थी।

देवदत्त ने राजा अजातशत्रु को उकसाकर भगवान् के विरुद्ध विद्रोह करने का षड्यन्त्र रचा, किन्तु बाद में राजा अजातशत्रु को पछतावा हुआ और देवदत्त के साथ मैत्रीसंबंध तोड़कर वह भगवान् बुद्ध का शिष्य बन गया।

एक दिन जब देवदत्त राजा से मिलने राजदुर्ग गया, तो दरवाज़े से ही लौटा दिया गया। उस समय उसने उत्पलवर्णा को दुर्ग-द्वार से बाहर निकलते देखा। उसे बहुत गुस्सा आया, इसलिए उसने उत्पलवणा को पीटकर घायल कर दिया।

वह बहुत पीड़ा सहन करती हुई अपने उपाश्रय को लौटी। जब दूसरी भिक्षुणियों ने उसे सान्त्वना देना चाही तब उसने कहा : ''बहनो, मानव-जीवन अप्रत्याशित है। सभी वस्तुएँ अनित्य और अनात्म हैं।

केवल निर्वाण का विश्व शांतिमय और भरोसा करन योग्य है। आपको प्रयत्नपूर्वक और उत्साह से साधना करते रहना चाहिए।'' और वह शांति से चल बसी।

4. अंगुलिमाल नामक एक क्रूर डाकू था, जिसके हाथ कई लोगों की हत्या से रँगे थे। किन्तु भगवान् बुद्ध ने उसका उद्धार किया और वह उनका शिष्य बन गया।

एक बार वह भिक्षा के लिए नगर में गया और अपने पुराने पाप-कर्मों के करण उसे बहुत कष्ट और दुःख भोगना पड़ा।

गाँववाले उस पर टूट पड़े और उसे बुरी तरह पीटा, किन्तु वह खून से लथपथ भगवान् के पास लौट गया और अपने पुराने क्रूर कर्मों का फल भुगतने का अवसर पाने के लिए भगवान के चरणों पर गिरकर उन्हें धन्यवाद दिया।

उसने कहा, ''भगवान, मेरा पहले का नाम 'अहिंसक' था, किन्तु अपने अज्ञान के कारण मैंने बहुत लोगों की जानें लीं और हर एक की अंगुली काटकर उनकी माला बनाकर पहनने लगा, इसलिए मेरा नाम अंगुलिमाल पड़ गया।

''अब तो त्रिरत्न की शरण लेकर मैंने निर्वाण की प्रज्ञा प्राप्त कर ली है। घोड़े या बैल का दमन करने के लिए कोड़े या रस्सी का उपयोग करना पड़ता है, किन्तु भगवान ने बिना कोड़े, रस्सी या अंकुश के मेरा दमनकर मेरे हृदय को पवित्र किया है।

''आज, भगवान, मैंने अपन किए का ही फल भुगता है। मैं न जीना चाहता हूँ, न मरना। मैं केवल शांति से काल की प्रतीक्षा करूँगा।''

5. मौद्गल्यापन, सारिपुत्र के समान, भगवान बुद्ध के दो अग्रश्रावकों में से एक थे। जब तैर्थिक लोगों ने देखा कि भगवान बुद्ध के उपदेशों का निर्मल जल लोगों के पास पहुँच रहा है और वे उत्साह से उसका प्राशन कर रहे हैं, तो उनके मन में बहुत ईर्ष्या पैदा हुई और उन्होंने उनके प्रचार में तरह-तरह बाधाएँ पैदा कीं।

किन्तु कोई भी बाधा उनके व्यापक धर्मप्रचार को रोक न सकी। तब तैर्थिकों ने मौद्गल्यायन की हत्या करने का प्रयत्न किया।

दो बार वे बच गए किन्तु तीसरी बार तैर्थिकों ने उन्हें घेर लिया और वे उनके प्रहारों के शिकार हुए।

हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं, मांस भी क्षत-विक्षत हो गया, पर मौद्गल्यायन उनके असीम अत्याचारों को सहन करते रहे, उनके निर्वाण-प्राप्त हृदय में कोई विकार नहीं आया। शांति से उन्होंने प्राण छोड़े।

अंगुत्तरनिकाय

भिक्षुओं, एक व्यक्ति ऐसा है जिसका इस संसार में जन्म बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, लोकानुकंपाय, देव-मनुष्यों के अर्थ, हित, सुख के लिए होता है कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। भिक्षुओ, वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति का इस संसार में प्रादुर्भाव कठिन है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत् सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, इस संसार में देखने को दुर्लभ है एक असामान्य व्यक्ति का जन्म। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति की मृत्यु पर सब को शोक करना चाहिए। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही हैं वह व्यक्ति।

भिक्षुओ, इस संसार में एक ऐसा व्यक्ति जन्म लेता है, जो अतुलनीय और अद्वितीय होता है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत् सम्यक्संबुद्ध। वे ही हैं वह व्यक्ति।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति का इस संसार में अविर्भाव एक महान चक्षु का, एक महान आभा का, एक महान प्रकाश का आविर्भाव है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

‘भगवान बुद्ध का उपदेश’
संबंधित मूल सूत्रग्रंथ

'भगवान बुद्ध का उपदेश' संबंधित मूल सूत्रग्रंथ

संक्षेप:– दी.नि. – दीघ निकाय
म.नि. – मज्झिम निकाय
स.नि. – संयुक्त निकाय
अं.नि. – अंगुत्तर निकाय

बुद्ध

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
अध्याय 1			
1	2	1	विभिन्न सूत्र
	5	2	अं.नि. 3-38, सुखुमाला-सुत्त
	5	13	म.नि. 3-26, अरियपरियेसन-सुत्त
	6	1	विभिन्न मूल
	6	20	म.नि. 9-85, बोधिराजकुमार-सुत्त
	7	8	विभिन्न सूत्र
	7	11	सुत्त-निपात 3-2, पधान-सुत्त
	7	16	विभिन्न सुत्त
	8	9	विनय, महावग्ग।
	9	10	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
2	10	15	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
	11	8	परिनिब्बान-सुत्त
	13	10	परिनिब्बान-सुत्त
	13	16	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
अध्याय 2			
1	15	1	अभितायुर्ध्यान और विमलकीर्तिनिर्देश सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	15	4	शूरंगम-सूत्र
	15	9	विमलकीर्ति-निर्देश और महापरिनिर्वाण-सूत्र
	16	6	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 16
	16	17	महायान-जातक-चित्तभूमिपरीक्षा सूत्र
	17	9	महापरिनिर्वाण-सुत्र
2	19	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 3
	20	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 4
	21	11	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 5
3	22	13	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 16
अध्याय 3			
1	25	1	अवतंसक-सूत्र 5
	26	4	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	26	9	अवतंसक-सूत्र
	26	17	सुवर्णप्रभासोत्तमराज-सूत्र 3
2	29	6	अवतंसक-सूत्र
	29	12	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
	29	19	संक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र
	29	20	अवतंसक-सूत्र
	30	5	स.नि. 35-5
	30	8	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	32	7	म.नि. 8-77, महासकुलूदयी-सूत्र
	33	4	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	33	13	लंकावतार-सूत्र
	34	3	अवतंसक-सूत्र 32
	34	16	सद्धर्मपुण्डरीक-सुत्र 25
	35	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	35	11	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 2
	35	16	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 2

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ

धर्म

अध्याय 1			
1	38	1	विनय, महावग्ग 1-6और सं. नि. 56' 11-12, धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त
	39	12	इतिवुत्तक 103
	40	5	म. नि. 2, सब्बासव-सुत्त
	40	11	बयालीस अध्यायों का सूत्र 18
	41	3	श्रीमालादेवीसिंहनाद-सूत्र
3	42	20	अवतंसक-सूत्र 22, दशभूमिक
अध्याय 2			
1	46	1	म.नि. 4-35, चूलसच्चक-सुत्त
	48	6	अं.नि. 5-49, राज-मुण्ड-सुत्त
	48	16	अं.नि. 4-185, समण-सुत्त
	49	4	अं.नि. 3-134, उप्पाद-सुत्त
2	49	11	लंकावतार-सूत्र
	49	14	अवतंसक-सूत्र 2
	50	1	अवतंसक-सूत्र 16
	50	9	अवतंसक-सूत्र 22, दशभूमिक
	51	1	लंकावतार-सूत्र
	51	5	अं.नि. 4-186, उम्मग्ग-सुत्त
	51	8	धम्मपद 1, 2, 17, 18
	52	1	सं. नि. 2, 1, 6, कामद-सुत्त
3	52	10	अवतंसक-सूत्र 16
	52	16	लंकावतार-सूत्र
	53	10	म.नि. 3-22, अलगड्डूपम-सुत्त
	54	12	लंकावतार-सूत्र
	54	16	लंकावतार-सूत्र
4	57	7	विनय, महावग्ग 1-6
	58	1	लंकावतार-सूत्र
	58	5	सं.नि. 35-200, दारुखण्ड-सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	58	15	लंकावतार-सूत्र आदि
	59	5	म.नि. 2-18, मधुपिंडिक-सुत्त
	59	16	लंकावतार सूत्र
	60	11	लंकावतार-सूत्र
	61	11	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
	63	12	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
	63	20	लंकावतार-सूत्र आदि
अध्याय 3			
1	65	1	विनय, महावग्ग 1-5
	65	13	विनय, चूलवग्ग 5-21
	66	5	शूरंगम-सूत्र
2	71	7	शूरंगम-सूत्र
	73	7	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	73	12	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 7 और शूरंगम-सूत्र
	74	7	अवतंसक-सूत्र 32
	74	11	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	74	14	ब्रह्मजाल-सूत्र
	75	2	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	75	20	महापरिनिर्वाण-सू
अध्याय 4			
1	81	1	श्रीमालादेवीसिंहनाद-सूत्र
	82	7	अं.नि. 2-11
	82	12	इतिवुत्तक 93
	82	17	विनय, महावग्ग
	83	8	अं.नि. 3-68, अञ्ञातित्थिक-सुत्त
	83	21	अं.नि. 3-34 आलवक-सुत्त
	84	13	वैपुल्य-सूत्र
	84	19	विनय, महावग्ग 1-6, धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त
	85	3	म. नि. 2-14, चूलदुक्खखन्ध-सुत्त

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	85	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	86	13	इतिवुत्तक 24
	88	9	म.नि. 6-51, कन्दरक-सुत्तन्त
2	89	5	अं.नि. 3-130
	89	14	अं.नि 3-113
3	90	7	इतिवुत्तक 100
	90	18	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
	91	15	महापरिनिवार्ण-सूत्र
	93	1	अं.नि 3-62
	93	13	अंनि 3, 35, देवदूत-सुत्त
	94	19	थेरीगाथा अट्ठकथा
4	95	16	सुखावतीव्यूह-सूत्र उत्तराधं
अध्याय 5			
1	102	1	सुखावतीव्यूह-सूत्र पूवार्धं
	105	14	सुखावतीव्यूह-सूत्र उत्तरार्ध
	107	4	अमितायुर्ध्यान-सूत्र
2	110	15	संक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र

साधना का मार्ग

अध्याय 1			
1	116	1	म.नि. 2, सब्बासव-सुत्त
	117	16	म.नि. 3-26 अरियपरियेसन-सुत्त
	118	11	सं.नि. 35-206, छपान-सुत्त
	119	10	बयालीस अध्यायों का सूत्र 41-2
	121	16	म.नि 2-19 द्वेधावितक्क-सुत्त
	122	12	धम्मपद अट्ठकथा
2	123	10	अं.नि. 3-117
	124	1	म.नि 3-21, ककचूपम-सुत्त
	127	1	म.नि. 3-23, वम्मीक-सुत्त
	128	13	जातक 4-497, मातंग-जातक
	132	3	बयालीस अध्यायों का सूत्र 9

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	132	11	बयालीस अध्यायों का सूत्र 11
	133	6	बयालीस अध्यायो का सूत्र 13
	134	2	अं.नि. 2-4, समचित्त-सुत्त
3	134	16	संयुक्तरत्नपटिक-सूत्र
	144	15	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	145	15	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
अध्याय 2			
1	150	1	म. नि 7-63, चूलमालुङ्क्य-सुत्तन्तं
	152	9	म. नि. 3-29., महासारोपम-सुत्त
	154	1	महामाया-सूत्र
	154	12	थेरगाथा अट्ठकथा
	156	7	म.नि. 3-28, महाहत्थी-पदोपम-सुत्त
	156	21	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	157	12	अवदानशतक-सूत्र
	158	19	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	160	12	पंचविंशती-साहस्रिका-प्रज्ञापारमिता-सूत्र
	161	18	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
2	163	11	अं.नि. 3-88
	164	8	अं.नि. 3-81
	164	14	अं.नि. 3-82
	165	9	परिनिब्बान-सुत्त खण्ड 2
	166	10	म.नि. 14-141, सच्चविभंग-सुत्तं
	167	13	परिनिब्बान-सुत्त खण्ड 2
	168	11	अं.नि 5-16, बल-सुत्त
	168	15	अवतसंक-सूत्र 6
	169	9	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	170	5	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
	171	1	सुवर्णप्रभास-सूत्र 26
	171	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	172	12	थेरगाथा अट्ठकथा

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	173	7	जातक 66, पंचावुध-जातक
	174	7	इतिवुत्तक 39 और 40
	174	16	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	174	19	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	175	1	अं.नि 5-12
	175	6	परिनिब्बान-सुत्त
	175	16	शूरंगम-सूत्र
3	176	18	सं.नि. 55-21 और 22, महानाम-सुत्त
	177	16	अं.नि. 5-32, चुण्डी-सुत्त
	178	5	विमलकीर्तिनिर्देश-सूत्र
	178	11	शूरंगम-सूत्र
	178	16	सुखावतीव्यूह-सूत्र खण्ड 2
	179	1	सं.नि. 1-4-6
	179	7	अवतंसक-सूत्र 33
	180	6	अवतंसक-सूत्र 24
	180	17	सुवर्णप्रभास-सुत्र 4
	181	7	अमितायुर्ध्यान-सूत्र
	181	10	सुखावतीव्यूह-सूत्र
	181	15	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	182	8	म.नि. 2-16, चेतोखिल-सुत्त
	183	5	सुखावतीव्यूह-सूत्र खण्ड 2
4	184	1	धम्मपद
	192	1	सं.नि 1-4-6
	192	11	अं.नि.
	192	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ

संघ

अध्याय 1

1	194	1	इतिवुत्तक 100 और म. नि. 1, 3,
			ायाद-सुत्त
	194	5	इतिवुत्तक 92
	195	1	विनय, महावग्ग 1-30
	195	16	म. नि. 4-39, महा-अस्सपुर-सुत्त
	197	3	म. नि. 4-40, चूल-अस्सपुर-सुत्त
	198	4	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 10
	198	9	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 10
	199	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 14
2	200	9	सं. नि. 55-37, महानाम-सुत्त
	201	1	अं.नि. 3-75
	201	6	सं.नि. 55-37, महानाम-सुत्त
	201	10	सं. नि. 55-54, गिलायनम्-सुत्त
	201	15	अवतंसक-सूत्र 22
	203	7	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	206	4	अवतंसक-सूत्र 7
	209	2	महामाया-सूत्र
	210	1	अवतंसक-सूत्र 21
	210	20	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	212	1	दी.नि. 31, सिंगालोवाद-सुत्त
	217	13	अं.नि. 2-4, समचित्त-सुत्त
	218	8	अं.नि. 3-31
	218	15	जातक 417, कच्चानी-जातक
	220	15	दी.नि 31, सिंगालोवाद-सुत्त
	221	5	धम्मपद अट्ठकथा।

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	222	11	(बरमी टीकाएँ)
	223	5	श्रीमालादवीसिंहनाद-सूत्र
अध्याय 2			
1	226	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	227	17	अं.नि. 3-118, सोचेय्यन-सुत्त
	229	12	सं.नि.
	230	4	विनय, महावग्ग 10-1 और 2
	230	11	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
	231	19	विनय, महावग्ग 10-1 और 2
2	234	12	सं.नि.
	235	9	च्यूइन-क्यो-सूत्र
	235	15	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
	237	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	237	15	सॅक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र
	238	3	सुखावतीव्यूह-सूत्र
	238	14	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
3	239	5	धम्मपद अट्ठकथा।
	239	11	अं.नि. 34-2
	240	8	धम्मपद अट्ठकथा।
	241	5	अं नि. 5-1
	241	8	सर्वास्तिवाद संघभेदक-वस्तु 10
	242	4	म. नि. 9-86, अंगुलिमाल-सुत्त
	243	3	अं.नि. 26